Swar Sindhu *ISSN 2348-9197* *Vol.3, Issue 2,April-June, 2015*

संगीत में सौन्दर्य की विभिन्न दशाएँ

डॉ. हरविन्दर शर्मा
प्रिंसिपल, राजकीय पी.जी. कालेज कालका, हरियाणा

विचारकों ने सौन्दर्य को परिमाणित करने का प्रयास किया है। किसी ने उसके आत्मपक्ष को महत्त दिया है तथा किसी न उसके वस्तुपक्ष को। कोई उसे विषयगत मानता है तथा कोई विषयीगत। सौन्दर्य की अनुभूति सरल, होते हुए भी उसे शब्दों में बांधना बहुत जटिल है। यही कारण है कि आज तक 'सौन्दर्य' को एकमत से परिभाषित नहीं किया जा सका। प्रायः सभी परिभाषाएँ एकांगी और अपूर्ण सी जान पड़ती हैं। साधारण शब्दों में कोई भी सजीव अथवा निर्जीव जो मानव हृदय को भीतर तक छू जाती है अथवा आनन्दित कर जाती है, वही 'सौन्दर्य' हृदय की छुअन, स्पर्श की सिहरन, चित्त तथा दृष्टि का आकर्षण है।

सौन्दर्य अंग्रेजी के 'एस्थेटिक' शब्द का पर्यावाची है, जिसकी उत्पत्ति यूनानी शब्द 'एस्थेसिस' से हुई है। एस्थेसिस शब्द का अर्थ है – इन्द्रियों का अनुभव। आज 'एस्थेटिक' का अर्थ सौन्दर्य–दर्शन के रूप में लिया जाता है तथा यह सौन्दर्य बौधक पर्याय है। व्याकरण की दृष्टि से 'सु' का अर्थ है– अच्छी प्रकार 'उन्द' का अर्थ है– 'आर्द्र करना' 'अरन' कर्त्तृवाचक प्रत्यय अर्थात् वह वस्तु जो मानव हृदय को भीतर तक गीला कर दे, संवेदित कर दे, वही 'सौन्दर्य' है। वहां विषय को गहराई में न ले जाते संगीत और सौन्दर्य के संबंध में ही परिभाषित किया जा रहा है।

पाश्चात्य तथा भारतीय विचारकों ने सौन्दर्य की विविध परिभाषाएँ दी हैं। कुछ विचारकों के अनुसार सौन्दर्य अलौकिक सत्ता के आश्रित हैं तथा शिव रूप है, कुछ लोग सत्य में सौन्दर्य देखते हैं। उसके अनुसार जो सत्य है वही शिव है और जो शिव है वही सुन्दर है किन्तु यहाँ भारतीय दर्शन के तर्क वितर्क में न पड़कर सौन्दर्य को सहज तथा सरल एवं सुखकर परिभाषा देना अपेक्षित है।

''प्रसाद जी सौन्दर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान माना है। यही उज्ज्वलता सौन्दर्य की सत्ता है।''

'पंत जी ने भी सौन्दर्य की अत्यन्त व्यापक परिभाषा दी है। सौन्दर्य मन, आत्मा एवं मानव–प्रकृति अथवा वस्तुगत के बाह्य रूपकार की वह विशेषता है जो प्राणी को आनन्द विभोर करने की क्षमता रखती है।''

पं. जगन्नाथ ने रमणीयता के माध्यम से सौन्दर्य को परिभाषित किया है। कालीदास ने रमणीय को सौन्दर्य का मूलभूत धर्म माना है। इस प्रकार भारतीय विचारकों ने सौन्दर्य की परिभाषा अपने ढंग से दी है। पाश्चात्य प्राचीन एवं आधुनिक विचारकों ने भी सौन्दर्य शब्द का मंथन का उसका रस निकालने का प्रयास किया है। यूनानी, रोमन, जर्मन, आंगल आदि पाश्चात्य विचारकों ने आज तक सौन्दर्य की जो विविध परिभाषाएँ निश्चित की हैं उनके चार केन्द्र बिन्दु हैं – सत्य, शिव, आश्रय और विभाव। उनके अनुसार जो कुछ भी व्यक्त सृष्टि है, वह ईश्वर का ही अंश है। ईश्वर अंक है और यह जगत् उसी का अंश। ईश्वर पूर्ण है इसमें सौन्दर्य की निधि है। ईश्वर पूर्ण है और स्वतः सिद्ध है। सत्य भी पूर्ण और स्वतः सिद्ध है। ईश्वर और सत्य दोनों एक ही है इसलिए कुछ विचारक सत्य में सौन्दर्य देखते हैं।

रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'सौन्दर्य बाहर की वस्तु नहीं, मन की वस्तु है।' सुकरात ने जीवन और सौन्दर्य को पृथक–पृथक नहीं माना। दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं अरस्तु सौन्दर्य के वस्तुपरक दृष्टिकोण को अपनाएं हैं। वैसे तो प्लेटो तथा सुकरात दोनों ही सौन्दर्य के लिए उपयोगिता और नैतिकता को प्रमुख माना है। प्लेटो का विचार है कि एक ही व्यापक सत्ता की उपस्थिति प्रत्येक स्थान पर है उसी परम तत्त्व से प्रत्येक वस्तु सौन्दर्य प्राप्त करती है।

सौन्दर्य की कोई सर्वसम्मत्त परिभाषा उपलब्ध नहीं है तथापि उसका सार्वजनिक और विश्वव्यापी महत्त्व है और यहाँ तो देवता तक उससे प्रभावित हुए हैं। ''पाश्चात्य चिन्तकों की परम्परा में सौन्दर्य तालानुगति अवयव संगीत और सुस्वता से सम्बन्धित रहा है और एक प्रकार से वैभिन्न में ऐक्य उाके स्वरूप या आकारगत आधार का मूल तत्त्व माना गया है। क्रोचे ने सौन्दर्य अन्तर्गत भी अभिव्यंजना के सौन्दर्य को ही सौन्दर्य कहा है। स्पष्ट है कि संगीत में अभिव्यंजना का सौन्दर्य अन्य कलाओं से कहीं अधिक विशिष्ट होता है। क्रोचे की यह उक्ति इस संदर्भ में सार्थक हैं कि–

"We may define beauty as successful expression, or better, as expression and nothing more, because expression, when it is not successful is not expression."

ललित कलाओं में संगीत का विशिष्ट स्थान है। ध्वनि में इतनी शक्ति है – इतना आकर्षण है कि वह मनुष्य तो क्या सम्पूर्ण सृष्टि को अपने में आत्मसात् करने की क्षमता रखता है – यही उसका सौन्दर्य पक्ष है। सौन्दर्य का गुण कला में जितना अधिक होगा, कला उतनी ही उत्कृष्ट तथा श्रेष्ठ होगी। कला में जिस अलौलिक आनन्द की चर्चा होती है, उसके मूल में सौन्दर्य का यही भाव निहित होता है। सौन्दर्य की इसी पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए विचार करना होगा। संगीत हो या काव्य सभी ललित कलाओं का प्रथम उद्देश्य जनमानस का मनोरंजन कहना होता है। संगीत में सौन्दर्य की विभिन्न दशाएँ इस प्रकार है –

1. स्वरमूलक सौन्दर्य
2. लय मूलक सौन्दर्य
3. भावात्मक सौन्दर्य
4. ताल सम्बन्धी सौन्दर्य
5. काकु प्रयोग।

स्वरमूलक सौन्दर्य

नैसर्गिक रूप से 'नाद' इस सृष्टि में व्याप्त है केवल उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम भिन्न है। इन्हीं विभिन्न माध्यमों से भारतीय आचार्यों ने प्रकृति से स्वराधार ग्रहण किये, जिनका काल्पनिक तथा भावमूलक धरातल तो है ही अपितु सौन्दर्य शास्त्रीय और वैज्ञानिक धरातल भी है। 'नारदीय शिक्षा' माण्डुकी शिक्षा और याज्ञवल्क्य शिक्षा–ग्रन्थों में स्वरों की विकास–प्रक्रिया, उद्भव तथा समतुल्यता के सम्बन्ध में यह विचार प्रकट किया गया है कि षड़ज आदि स्वर विभिन्न पशु–पक्षियों की बोलियों अथवा ध्वनियों की अनुरूपता लिये हुए हैं।

'षाडज् मयुरो वदति गावो रम्भन्ति चर्ममम्।
अजादिके तु गान्धारं क्रोचो पदति मध्यम्।।
पुष्प साधारणे काले पिको वक्ति च पंचमम्।
अश्वस्तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुन्जरः।।

अर्थात मयूर की ध्वनि षडज, गो की ऋषभ्, अजा की गान्धार, क्रौंच की मध्यम, कोकिल की पंचम, अश्व की धैवत तथा हाथी की निषाद् – यह सप्त–स्वरीय ध्वनियाँ की जाती है। स्वर समाधि में लीन होकर कलाकार समस्त जगत से विमुख हो जाता है और उसके अन्तःकरण से सौन्दर्य से सम्पन्न कृति प्रस्फुटित होती है।

अतः स्वर में इतना आकर्षण है कि वह मनुष्य तो क्या सम्पूर्ण सृष्टि का स्वयं में आत्मसात् करने की शक्ति रखता है। संगीत में स्वरों का सही लगाव– मींड, गमक खटका, मुर्की आदि अलंकरणों से सजाया, संवारा जाता है तथा उसमें माधुर्य भाव उत्पन्न किया जाता है। संगीत का यही माधुर्य भाव स्वर–मूलक सौन्दर्य कहलाता है।

लयमूलक सौन्दर्य

ताल वाद्यों के द्वारा लय की गतिमानता में भी रस–प्रतीत विद्यमान है जो गायक अथवा वादक और सहृदय सामाजिकों में एक रूप ही होती है। इसी निर्विघ्न प्रतीति को अभिनव ने शेवागमों की अवधारणा के आधार पर चमत्कार कहा है। वस्तुतः यह चमत्कार अनुभूति जन्म, भावोन्मेष का एक विलक्ष्ण स्फूर्तिपद आनंद है जिसे अन्तस्य शक्ति का उन्मेष भी कहा जा सकता है। सृष्टि का क्रम भी लयात्मक है। लय के बिना सृष्टि का संतुलन भी नहीं रहता। जो महत्त्व प्राणों का शरीर के लिए है वही महत्त्व लय का संगीत में है। लय की प्रवाहमयता सांगीतिक संरचना को और अधिक भावोत्पादक बनाने में सहायक सिद्ध होती है।

लय संगीतकार को एक निश्चित रूप रेखा, मार्गदर्शन प्रदान करती है तथा इसका संगठित और व्यवस्थित रूप निरंतर और आबाद सौन्दर्य तथा रस धारा के रूप में प्रवाहित होने में सहायक होता है। लय संगीत की संजीवनी हैं जो संगीत में गीत तथा स्पंदन प्रदान है।

भावमूलक सौन्दर्य

संगीत प्रत्येक राग किसी न किसी भाव को अभिव्यक्त करता है। कोई भी राग भावशून्य नहीं। यही भाव तथा भावाभिव्यक्ति राग का रस है। यदि राग में विशिष्ट रस न हो तो सभी राग सुनने में एक रस लगेंगे। प्रत्येक राग का अपना विशेष रस है। जो राग से उत्पन्न होता है जो भाव राग भैरव के स्वर उत्पन्न करते है वही भाव राग कल्याण के स्वर नहीं करते है। दरबारी कान्हड़ा का प्रभाव गंभीर तथा

सबसे भिन्न है। काफी राग की चंचलता का महत्त्व अपना ही स्थान रखता है। हर राग का रसात्मक भाव जब अपना प्रभाव तथा वातावरण बना देता है तो उसके तुरन्त बाद अन्य रसोत्पादक राग गाने–बजाने से उसका प्रभाव उत्पन्न नहीं होता। पहले राग का प्रभाव इतना प्रबल तथा सबल होता है कि आरम्भ में नया राग अप्रिय लगता है। कुछ समय बाद ही वह अपना प्रभाव जमाकर वातावरण बना लेता है। संगीत में सौन्दर्य अनुभूति के प्रभाव के कारण ही रोना या दुःख का भाव भी आनन्द प्रदान करता है। ''मानव मन तो अथाह सागर के समान है जहाँ असंख्य लहरें निरन्तर उठती गिरती रहती है। उन्हें नौ या ग्यारह स्थायी भावों और तैंतीस संचारियों में सीमित कर देना सर्वथा असंगत है।

ताल सम्बन्धी सौन्दर्य

ताल, लय, समय और मात्रा प्रधान होती है। प्रत्येक लयकारी और ताल का सौन्दर्य एक दुसरी ताल के सौन्दर्य से भिन्न होता है। द्रुत ताल की चंचलता, विलम्बित ताल की गंभीरता अलग–अलग सौन्दर्याद्रेक है। इसी विभिन्नता से संगीतकार की सुझ–बुझ तथा योग्ता की परीक्षा होती है। स्वर, ताल, लययुक्त राग का चर्मोत्कर्ष 'सम' पर आकर मानो मुर्तिमन्त आलम्बन का स्वकल्पित रूप होता है। इस प्रकार भारतीय संगीत रस सिद्धान्त की अवधारणाओं को समाहित किए हुए रहता है और वही उसका सौन्दर्य शास्त्रीय आधार है।

''भाव को अभिव्यक्त करने के लिए पशु और मनुष्य दोनों के लिए दो ही साधन हैं– एक है अंग की मुद्राएं या चेष्टाएं और दूसरा है– ध्वनि। भाव के सुक्ष्म भेद की अभिव्यक्ति को ही काकू कहते है। साहित्य दर्पण में काकू का लक्षण इस प्रकार बतलाया है– भिन्नकण्ठ ध्वनि धीरैः काकूः इत्यमिधियतेः। अर्थात ध्वनि के विकार, परिवर्तन या हेर–फेर को काकू कहते है। इससे स्पष्ट होता है कि भिन्न–भिन्न भाव को व्यक्त करने के लिए जो ध्वनि में भिन्नता आ जाती है उसे काकू कहते है।

काकू प्रयोग सौन्दर्य

काकू प्रयोग भाव और रसोत्पादन में सहायक होता है। इसी के प्रयोग के कारण संगीत, नाटक, पार्श्व गायन प्रभावशाली होता है। केवल सिद्धहस्त उच्चकोटि कलाकार ही इसका प्रयोग कर सकते हैं। काकू–प्रयोग में स्वर को उसकी उपयोगिता तथा लगाव तथा वज़न के अनुसार प्रयोग किया जाता है। पं0

ओंकारनाथ ठाकुर का काकू–प्रयोग सिद्ध था। जोगी मत जा, मत जा, मत जा– इसी का उदाहरण है। काकू प्रयोग के साथ मधुर, ध्वनि प्रवाह, स्वरात्मक लय व लय से अनुप्राणित स्वर आदि के मधुर सम्मिश्रण से ही संगीत की निर्मिति सम्भव है।

निष्कर्ष

अतः संगीत एक ऐसा माध्यम है जिसकी संपूर्ण प्रक्रिया में मानवीय भावों का सूक्ष्मता से अनुभव किया जा सकता है। संगीत मानव समाज की कलात्मक उपलब्धियों और सांस्कृतिक परंपराओं का मूर्तिमान प्रतीक है। संगीत अपनी संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाता है। कला संस्कृति का दर्पण और संस्कृति कला की प्रेरणा है। संगीत व संस्कृति का विकास एक दूसरे पर निर्भर करता है। लोक संगीत के माध्यम से ही किसी देश के अथवा समाज के जीवन–व्यापार, रहन–सहन, खान–पान व सभ्यता का पूर्ण विवरण मिल जाता है। संगीत हमारी समस्त सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मनोहर रूप है। यह हमारी आन्तरिक प्रवृतियों का प्रस्फुटन भी है और प्रतिबिम्ब भी। साधारण शब्दों में सच्चा सौन्दर्य वही है जो हृदय के असंख्य भाव दीप प्रज्वलित करने में सक्षम है, पाषाण हृदय द्रवित करने की शक्ति रखता है, जो आनन्द है तथा आत्मतुष्टि का परिचालक है। सौन्दर्य शाश्वत है, युगों–युगों से इसमें वृद्धि होती आ रही है क्योंकि यह सत्य, सुन्दर तथा शिवगुणों से परिपूर्ण है।

सन्दर्भ

डॉ. पुष्पा शर्मा, लोकगीतों में नाद–सौन्दर्य, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2006
डॉ. नागेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास
निबन्ध संग्रह, संगीत कार्यालय, हाथरस
संगीत पत्रिका, प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, 1971
डॉ. चन्द्र पाल, सौन्दर्य शास्त्रः स्वरूप व विकास
डॉ. प्रेमलता, रस सिद्धान्त मूल पल्लव पतझड़